ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-5* Issue-7* October-2020
Anthology : The Research

फाँस : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

Faans : A Sociological Study

Paper Submission: 15/10/2020, Date of Acceptance: 25/10/2020, Date of Publication: 26/10/2020

ओम प्रकाश रविदास
सह प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग,
राममोहन कॉलेज
कोलकाता विश्वविद्यालय,
कोलकाता, भारत

सारांश

कृषि प्रधान देश भारतवर्ष में किसानों की आत्महत्या का सिलसिला थमने का नाम नहीं ले रहा है। भारतीय किसान कर्ज में ही जन्म लेता है, कर्ज में ही जीता है और कर्ज में ही मर जाता है। परंतु इसका निदान आज तक हमारी सरकारें नही ढूंढ पाई। यद्यपि कर्ज तो बड़े–बड़े उद्योगपति भी लेते हैं। परंतु उनके लिए बैंकों के मापदंड अलग है। माल्या, नीरव मोदी जैसे लोग बैंकों का कर्ज लेकर देश छोड़ देते हैं परंतु किसानों को थोड़े से कर्ज के बावत अपना प्राण छोड़ना पड़ता है। हमारे देश का किसान लिए हुए कर्ज को चुकाने के प्रति अति संवेदनशील है, उद्योगपतियों की तरह धूर्त, मक्कार और भगौड़ा नहीं है। वह कर्ज को गले का फाँस समझता है। उस पर खेती के बीज के अलावा मुलगियों के विवाह के लिए दहेज का भी दबाव है। उपन्यास में बैंकों में हीरो होंडा खरीदने के लिए लोन उपलब्ध है, परंतु किसानों के लिए नहीं। मोहन दादा कृषि दफ्तर से खाली हाथ लौटते हैं। नवयुवती छात्रा कलावती किसानों की इस दुर्दशा के लिए कारपोरेट जगत को जिम्मेदार ठहराती है। उसका मानना है कि व्यापारियों और सरकारी अधिकारियों की मिलीभगत के कारण किसान मजबूरी में अपना अनाज औने– पौने दामों पर विचौलियों को बेचने, सड़क पर फेंकने और आत्महत्या करने को विवश हैं।कथाकार रेखांकित करते हैं कि सबसे घाटे में चलने वाला उद्योग कृषि है। किसान से मजदूर बनने का सिलसिला निरंतर जारी है। विदर्भ कृषि का ज्वालामुखी है आत्महत्या के मुआवजों में भी पात्र –अपात्र की राजनीति है। कृषि को हेय दृष्टि से देखा जाता है। पूंजीपतियों के दबाव में मीडिया किसानों की आत्महत्याओं की खबरों को हाईलाइट नहीं करते हैं। सुनील काका की आत्महत्या के पश्चात् पाटिल काका अपनी नासिक की फैक्ट्री से वी.आर.एस. लेकर नगौरा आकर पूर्णकालिक किसान बन गए हैं। सुनील काका के बेटे विजेंद्र का भी सारा रिसर्च किसानों की समस्याओं के इर्द–गिर्द है। इस प्रकार संजीव का मजदूरी से वापस किसानी में लाने वाला विचार प्रगतिशील है। उपन्यास के अंत में किसान फसल के न्यूनतम समर्थन मूल्य के निर्धारण में अपनी भागीदारी चाहते हैं।

The agrarian country is not taking the name of stopping the suicide of farmers in India. The Indian farmer is born in debt, lives in debt and dies in debt. But till date our governments have not been able to find a solution to it. Although big industrialists also take loans. But banks have different criteria for them. People like Mallya, Nirav Modi leave the country by taking loans from the banks, but the farmers have to give up their lives due to some debt. The farmer of our country is very sensitive to repaying the loan taken, is not sly, blatant and fugitive like industrialists. He considers debt as a sore throat. In addition to farming seeds, there is also the pressure of dowry for the marriage of the Mulagis. In the novel, loans are available to buy Hero Honda in banks, but not for farmers. Mohan Dada returns empty-handed from the agricultural office. Kalavati, a young girl student, blames the corporate world for this plight of farmers. She believes that due to the connivance of traders and government officials, farmers are compelled to sell their food grains at throwaway prices, throw them on the road and commit suicide. The authors underline that the most loss-making industry is agriculture. The process of moving from farmer to laborer continues. Vidarbha is a volcano of agriculture; even in compensation for suicide, there is a politics of ineligible. Agriculture is looked down upon. The media does not highlight the news of farmer suicides under pressure from the capitalists. After Sunil Kaka's suicide, Patil Kaka went to VRS from his Nashik factory. With this, Nagaura has come and become a full-time farmer. Sunil Kaka's son Vijendra also has all the research around the problems of the farmers. Thus, the idea of bringing Sanjeev back from the harvest is progressive. At the end of the novel, the farmers want their participation in determining the minimum support price for the crop.

मुख्य शब्द : किसानी, आत्महत्या, खेती ।

Farming, suicide, farming

प्रस्तावना

अमेरिका के तर्ज पर यहां भी कापूस किसानों के लिए कर्ज के स्थान पर सब्सिडी के अपेक्षा है ताकि किसानों की आत्महत्या का सिलसिला रुके। संजीव ने किसानों के मार्फत सरकार से कुछ सवाल पूछे हैं, हमारे देश में पेट्रोलियम, तेल का दाम जब तेल कंपनियां निर्धारित करती हैं, कोयला, स्टील का भाव सरकार उत्पादक से पूछ कर तय करती है, तो कृषि उत्पादों का भाव तय करते समय किसानों से विचार–विमर्श क्यों नहीं करती ? वह किसानों को सिर्फ बिजली माफी, कर्ज–माफी की भूल भुलैया में क्यों भटकाती है? इसलिए किसानों को पैकेज नहीं बल्कि ठोस पॉलिसी की आवश्यकता है। विदर्भ के किसानों को पैकेज नहीं पानी चाहिए। कलावती 65 वर्ष बाद अपने ससुराल में बिजली लाने में सफल होती है। ऐसा ही प्रयास खेती के लिए पानी लाने में अपेक्षित है वास्तव में विदेशी बीज, विदेशी गाय, विदेशी कर्ज, विदेशी नीति और यहां के किसानों की गरीबी और सूखी धरती सब ने मिलकर किसानों की दुर्दशा की। क्योंकि नीति उधार नहीं ली जाती है। वह अपने देश की स्थिति परिस्थिति और जनसंख्या के अनुरूप बनाने की अपेक्षा है।

अध्ययन का उद्देश्य

उपन्यास में खेती की विभिन्न समस्याओं मसलन बीजवपन, बिनाई, गोड़ाई, कटाई के साथ–साथ किसानों का आंतरिक और बाह्य शोषण है, जो उनके जी का जंजाल बन गया है, इससे मुक्ति की कामना ही लेखक का उद्देश्य है।

विषयवस्तु

सनातन काल से साहित्यालोचना के क्षेत्र में साहित्य का विश्लेषण उसकी आंतरिक संरचना यानी बिंब, प्रतीक, लक्षण, लय, भाषा, चरित्रांकन एवं कथानक की द्वंदात्मकता जैसी विशुद्ध साहित्यक एवं सौंदर्यवादी दृष्टिकोण के आधार पर होता रहा है। परंतु वर्तमान काल में साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन पर जोर दिया जा रहा है,तो ठीक इसके विपरीत कुछ आलोचक इसे साहित्य से बाह्य वस्तु मानकर इसका पुरजोर विरोध कर रहे हैं। वास्तव में वे इसे साहित्य के अध्ययन में बाह्य समाज का हस्ताक्षेप मानते हैं। यद्यपि साहित्य अध्ययन के काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण, भाषा वैज्ञानिक पद्धति तथा प्रयोजनमूलक संदर्भ का विरोध नहीं होता है। परंतु ज्योंहि यह कहा जाता है कि समाजशास्त्र कुछ साहित्यक समस्याओं पर प्रकाश डालेगा या समाजशास्त्र के समझ के बिना साहित्य की समझ ही संभव नहीं है तो पूरी ताकत के साथ इसका विरोध होता है।

वास्तव में विशुद्ध कलावादी या उसके प्रवक्ता साहित्य को उसके सामाजिक जिम्मेदारी से परे की कोई कथानक, चरित्रांकन या रंगीन मिज़ाजी की सामग्री के रूप में पेश करने से भी नहीं हिचकिचाते हैं। इसी तरह सौंदर्यवादी दृष्टिकोण में सौंदर्य के नाम पर साहित्य को अपने समाज की लोक परंपराओं, समस्याओं से काटकर उपन्यास का वर्णन करते हैं जबकि मानवता की रक्षा, वर्ग–भेद, आर्थिक विषमता का विनाश, सामाजिक समधर्मिता की स्थापना, शोषण मुक्त समाज का निर्माण ही वह सौंदय है जिसे हम साहित्य के जरिए प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण भी जीवन की समस्याओं का सही पहचान नहीं कर पाता है। क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसलिए सामाजिक क्रियाओं से वह प्रभावित भी होता है और समाज को प्रभावित भी करता है। मैकाइवर और पेज ने 'समाजशास्त्र' की परिभाषा देते हुए इसे सामाजिक संबंधों का जाल बताया। अर्थात– "समाजशास्त्र अनिवार्य रूप से, समाज में स्थित मनुष्य का वैज्ञानिक, वस्तुगत अध्ययन है– सामाजिक संस्थाओं और सामाजिक प्रक्रियाओं का अध्ययन।[1]" उपन्यासकार भी उसी समाज में रहकर रचना करता है जो अमीर–गरीब, मालिक– मजदूर, शिक्षित –अशिक्षित, सर्वण – अर्वण आदि अनेक वर्गों में बंटा हुआ है इनमें से एक वर्ग समस्त आर्थिक संपन्नता, राजनीतिक अधिकार, धार्मिक वर्चस्व एवं सामाजिक प्रतिष्ठा से लैस है जबकि दूसरा वर्ग इन सबसे वंचित एवं प्रताड़ित है। एक जागरूक उपन्यासकार समाज में घटने वाली इन घटनाओं को बहुत सुक्ष्मता से जाँचता–परखता है। वह समाज में प्रचलित रूढी, अंधश्रद्धा, संस्कार, वर्ण भेद, वर्ग भेद, सामंती – पूंजीवादी शोषण, धार्मिक कर्मकांड, राजनीतिक प्रभाव, राष्ट्रीय संपत्ति की लूट की होड़, अनैतिकता, अविचार, रहन–सहन, सभ्यता, संस्कृति आदि का चित्रण एवं विश्लेषण अपने उपन्यासों में करता है।

अतः इन उपन्यासों पर जितना अधिक समाज का प्रभाव पड़ता है उसकी सामाजिकता उतनी ही निखर कर सामने आती है जिसे 'उपन्यास का समाजशास्त्र' कहते हैं। कुछ आलोचक इसे 'साहित्य का समाजशास्त्र' या 'साहित्यिक आलोचना' या समाजशास्त्र का ही एक शाखा जैसे भिन्न नामों से संबोधित करते हैं।परंतु मैनेजर पांडेय 'साहित्य के समाजशास्त्र' को 'समाजशास्त्र' से अलग एक स्वतंत्र विद्या मानते हुए लिखते हैं–"पिछले सौ वर्षों में संस्कृति की भौतिकवादी व्याख्या के आधार पर कलाओं का जो समाजशास्त्र विकसित हुआ है उसका एक रूप है साहित्य का समाजशास्त्र। उसे कोई साहित्य का समाजशास्त्र कहे, साहित्यिक समाजशास्त्र कहे या समाजशास्त्रीय आलोचना कहे–कोई खास फर्क नहीं पड़ता। मुख्य बात यह है कि उसका लक्ष्य साहित्य की सामाजिकता की व्यख्या करना है।"[2] भारत एक कृषि प्रधान देश है और भारतीय अर्थव्यवस्था में किसानों का बहुत बड़ा योगदान है। आजादी के 70 वर्ष बाद भी भारतीय ग्रामांचल और किसानों की स्थिति में कोई सुधार नहीं आया है, वह बद से बदतर होती जा रही है। किसानों के आत्महत्या का सिलसिला थमने का नाम नहीं ले रहा है। संजीव का जन्म भी गांव में हुआ था। उनके परिवार के पास डेढ़ बीघा उपजाऊ और चार बीघे उसर जमीन थी जिस खेती के बल पर 20 से 25 पारिवारिक सदस्य आश्रित थे। उनकी पत्नी सहित मां, काकी सभी खेतों में काम करते थे। नरेन के अनुसार तो संजीव को अपनी नवव्याहता पत्नी से एकांत में मिलने का अवसर भी

बाजरे के खेत में बोझा उठाने के दौरान मिला था। इसलिए गांव की दमन और जलालत भरी जिंदगी से वे भली–भांति अवगत हैं। अपनी पहली ही कहानी संग्रह 'तीस साल का सफरनामा' में उन्होंने किसानों को मजदूर में बदल जाने तथा नंबरदार को महाजन में बदल जाने की यथार्थ कथा कही– ''इन तमाम दौरों से गुज़रते हुए आज सुरजा किसान से मजूर बन गया है और नंबरदार किसान से महाजन।''[3] उन्होंने इसी कहानी में ही सामंती शोषण को स्पष्ट कर दिया है, जहां सड़क के लिए जमीने भी गरीब किसानों के खेतों से कब्जियाई गई, बड़े जमींदारों के खेतों से नहीं, भले ही उसके लिए सड़क को कितनी भी लंबी राह तय करनी पड़े। रोजगार के अभाव में संजीव के परिवार के कुछ सदस्यों को गांव से पलायन करना पड़ा था। आज भी किसानों का शहर की ओर पलायन अनवरत जारी है। यद्यपि भारतीय किसानों पर रचनाओं की कोई कमी नहीं रही है। प्रेमचंद जैसे बड़े रचनाकार ने किसानों की समस्याओं को उठाया, परंतु उनके समस्याओं का निदान आज तक हमारी सरकारें नहीं ढूंढ पाईं। जिस महाजनी सभ्यता का प्रेमचंद ने विरोध किया, वह वैश्वीकरण और बैंकों का रूप धारण करके आती रही और हमारे किसानों की बलि लेती रही। आज भी भारतीय किसान भाग्यवादी हैं, उसके पास सिंचाई, कटाई, बुआई के समुचित साधन उपलब्ध नहीं है। कुछ एफसीआई के गोदामों की किल्लत और अधिक भ्रष्टाचार के कारण अनाज बारिश में ही पडे–पड़े सड़ जाते हैं। अगर इस प्राकृतिक आपदा से बचें, तो उनको उनके फसलों का न्यायोचित दाम नहीं मिलता। सरकारी अफसरों और बिचौलियों की मिलीभगत के कारण इन्हें अपने अनाजों का न्यूनतम समर्थन मूल्य भी नहीं प्राप्त होता है और वह औने–पौने दामों पर अपनी फसलों को बिचौलियों को बेचने के लिए विवश होते हैं। प्राकृतिक आपदा और महाजनी सभ्यता के चंगुल में फंसा आत्महत्या को मजबूर किसानों की समस्याओं को लेकर प्रेमचंद की कड़ी को आगे बढ़ाता संजीव का यह नवीनतम उपन्यास फाँस है। जैसा कि संजीव के बारे में हम जानते हैं कि वह किसी भी रचना को लिखने से पहले रचना की विषय –वस्तु को लेकर शोध की प्रक्रिया से गुजरते हैं। आज देश में पिछले कई वर्षों से किसानों की आत्महत्या का सिलसिला रुकने का नाम ही नहीं ले रहा है। पिछले एक दशक में लाखों किसान कर्ज के कारण आत्महत्या कर चुके हैं। विदर्भ में तो यह आंकड़ा और भी भयावह है। संजीव ने महाराष्ट्र के यवतमाल जिले के बनगांव गांव को आधार बनाकर पूरे भारतवर्ष के किसानों की दशा का चित्र खींचने का प्रयास किया है। संजीव ने प्रस्तुत उपन्यास में भूख और गरीबी में लिपटे हुए किसानों की आर्थिक और समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया है। उपन्यास के प्रमुख पात्र शिबू और शकुन के पास 2 एकड़ की खेती है, पहला एकड़ कापूस के लिए तो दूसरा एकड़ धान गेहूं के लिए। एक एकड़ ऊंचास पर तो एक एकड़ निचास पर। बनगांव गांव पहाड़ों की ढलानों पर बसा हुआ है और बारिश का पानी ढलान पर के खेतों पर रुक ही नहीं पाते हैं – "बारिश हुई तो ऊपर का पानी पहाड़ी से ढलानों पर रिस– रिस कर नीचे उतरता है। यह संयोग है या कोई करिश्मा है कि ऊंचास पर स्थित दलित, पिछड़े और मामूली जोत के किसानों के खेतों के कंठ भी नहीं भींगते कि पानी नीचे ढुलक जाता है। नीचे ब्राह्मण, राजपूतों और कुछ मराठा परिवारों के खेत और बाग–बगीचे हैं –संतरे, अनार के बाग। पानी रिस–रिस कर उत्तर के एक बाग में जमा होता है।"[4] उपयुक्त विश्लेषण के अध्ययन के पश्चात पाठकों को यह समझने में देर नहीं लगती की भूमि का यह अनियमित और असमान वितरण सिर्फ संयोग नहीं बल्कि प्रभुता संपन्न लोगों की दिमागी कारसाजी की उपज है। उपन्यास में 2 एकड़ खेती पर आश्रित शिबू के चार परिवारिक सदस्य हैं। कीचड़ पानी युक्ति जमीन में खेती के लिए हाल्या की जरूरत थी, परंतु एक बैल से ही काम चलाते हैं, दूसरा बैल किसी से उधार मांगना पड़ता है।कर्ज से तो किसानों का सदियों का नाता है। स्वतंत्रता के पश्चात भी सामंतवादी जड़े और महाजनी सभ्यता के विद्रूप रूप उखड़ नहीं पाए। कर्ज की चपेट में कुचले हुए गरीब किसानों की अंतर्मन की दशा एवं दम तोड़ती उनकी संघर्ष यात्रा को संजीव ने एक सामाजिक, मानवीय दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने की कोशिश की है। यद्यपि कर्ज तो बड़े–बड़े उद्योगपति भी लेते हैं। परंतु उनके लिए बैंकों के मानदंड अलग हैं। विजय माल्या, नीरव मोदी जैसे लोग बैंकों का कर्ज लेकर देश छोड़ देते हैं परंतु किसानों को अपने थोड़े कर्ज को ना चुका पाने की स्थिति में अपना प्राण छोड़ना पड़ता है उपन्यास में शकून किसानों की इस विडंबना को रेखांकित करती है –"इस देश का किसान कर्ज में ही जन्म लेता है, कर्ज में ही जीता है, कर्ज में ही मर जाता है।"[5] चुनाव के समय नेता इन किसानों से बड़े–बड़े वायदे करते हैं और जब उनके वोटों से चुनाव जीत जाते हैं तो उन्हें भुला दिया जाता है। बैंकों में हीरो होंडा खरीदने के लिए लोन उपलब्ध है, परंतु किसानों के लिए नहीं। मोहन दादा कृषि दफ्तर से खाली हाथ लौटते हैं। हमारे देश का किसान अपने लिए हुए कर्ज को चुकाने की प्रति अति संवेदनशील है, उद्योगपतियों की तरह धूर्त, मक्कार और भगौड़ा नहीं है। वह कर्ज को अपने गले का फाँस समझता है। खेती की बावत लिए गए अपने कर्ज को चुकाने के लिए शिबु और शकुन के परिवार में अजीब छटपटाहट है। गुढ़ी पाड़वा जैसे त्यौहार पर भी पूरा परिवार पैसा बचाने के लिए सादा भोजन करता है। 25000 का कर्ज चुकाने के लिए फसल बेच – बेच कर पूरा जोड़–तोड़ लगाकर 27000 रूपये इकट्ठा करके बैंक पहुंचता है। जहां यह राशि सूद समेत 29 हजार नौ सौ साठ रूपये ठहरती है, जिसे शकून अपने गले की हसुली बेचकर पूरा करती है। किसानों पर खेती के अतिरिक्त और भी सामाजिक दायित्व है जिसमें एक है मुलगियों का विवाह। खेती का बीज तो शकुन का कानबाली बेचकर लाया जा सकता है परंतु बेटियों के विवाह के लिए दहेज तो बिना कर्ज के संभव नहीं है। जबकि सुनील काका सारे किसानों को कर्ज से बचने की सलाह देते हैं। वे उन्हें फटकारते हैं कि खबरदार जो कोई आत्महत्या के बारे में सोचा। वे किसानों के अंदर राणा प्रताप की तरह दृढ़ इच्छा शक्ति उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं। इतनी हिम्मत वाले व्यक्ति जो सारे किसानों के लिए आदर्श थे, जो आत्महत्या

को कायरता समझते थे, एक बार के सूखे में ही टूट गए और खुद फांसी पर झूल गए। उपन्यास में नवयुवती छात्रा कलावती किसानों की दुर्दशा के लिए कारपोरेट जगत को जिम्मेदार ठहराती हैं–"कारपोरेट–सोशल रिस्पोसिबिलिटी इन देसी – विदेशी सेठों की जिम्मेवारी। आपूर्ति उतनी ही होती है जितने में इसका ग्राहक बचा रहे। किसी को भी किसानों की आत्महत्या की फिकर नहीं, किसी को भी नहीं।"[6] उसका मानना है कि यह सेठ साहूकार पूंजीपति अपने सामाजिक दायित्व का पालन नहीं करते हैं। किसानों के पास अन्न के भंडार सड़ रहे होते हैं। सरकारें उन्हें नहीं खरीदती हैं। व्यापारी बाजार में अपने ग्राहकों में मांग बनाए रखने के कारण अधिक उपज वाले सामग्री को नहीं खरीदते हैं। मजबूरी में किसान उसे औने-पौने दामों पर बिचौलियों को बेचने, सड़क पर फेंकने और आत्महत्या करने को विवश होता है। किसानों की आत्महत्याओं की खबरों को सरकार और पूंजीपतियों के दबाव में मीडिया भी सही से नहीं उठाती है। ग्लोबलाइजेशन के इस दौर में सब कुछ बिकाऊ है। बड़े उद्योग छोटे – छोटे उद्योगों को निगलते जा रहे हैं घाटे में चलने वाली कंपनियां बंद की जा रही है। संजीव यहां रेखांकित करते हैं कि सबसे घाटे में चलने वाला उद्योग कृषि है। उपन्यास में रेखांकित है कि अब तक अस्सी लाख किसान खेती छोड़ चुके हैं। प्रेमचंद जी ने 'पुस की रात' कहानी में अभाव ग्रस्त किसान को खेती छोड़ कर मजदूर बनते दर्शाया है। सारा जीवन खेती करने के बाद भी मोहन दादा विपन्न है और बुढ़ापे में भी नाना से किसी काम के बारे में पूछते हैं तो नाना कहते हैं – "काम तो इन दिनों एक ही है – बालू, मिट्टी, ईंट या खाद की ढुलाई। सड़कों के किनारे सारी खेती वाली जमीनें बिक चुकी है। मकान बन रहे हैं। आने वाले दिनों में सिर्फ बिल्डिगें होंगी, चमचमाती सड़कें होंगी और चमचमाती गाड़ियाँ। न हमारे तुम्हारे जैसे लोग होंगे, न शेती, न हमारी–तुम्हारी बैलगाड़ियां।"[7] बढ़ती जनसंख्या के कारण खेतीहर भूमि छिनती जा रही है और खपत बढ़ती जा रही है। ऐसी स्थिति में इतनी बड़ी जनसंख्या का पेट भरना एक चुनौती का कार्य है। उपजाऊ भूमि पर सिर्फ बिल्डिगें ही नहीं बन रही हैं, उद्योगपति भी उद्योग लगाने के लिए इसी प्रकार की जमीन का चुनाव कर रहे हैं। नंदीग्राम और सिंगूर में हम भूमि अधिग्रहण का हस्र देख चुके हैं जहां दो–तीन फसली जमीनों का अधिग्रहण उद्योग के लिए किया गया, जबकि राज्य में ऊसर और अनउपजाऊ भूमि उपलब्ध है जहां उद्योग लगाए जा सकते हैं। इस तरह किसानों का भला सत्ता और विपक्ष किसी के द्वारा नहीं हुआ है। इसलिए किसान खेती छोड़कर मजदूर बनते जा रहे हैं। उपन्यास में एक किसान अपने 5 एकड़ खेत बेचकर प्यून की नौकरी प्राप्त करता है। तब उसका विवाह होता है यानी प्यून का विवाह पहले होता है किसान का बाद में। खुद मोहन दादा भी अपनी लड़की का विवाह किसान से ना करके मजदूर से करते हैं और सदा यह घोषणा करता है कि अगले साल से वह शेती छोड़ रहा है। इस प्रकार से शेती छोड़कर मजदूर बन जाना एक प्रकार से किसान की आत्महत्या ही है। सरकार की बीटी कॉटन बीज, कर्ज माफी और मनमोहिनी गाय की योजना भी किसानों को नहीं बचा पाई। क्योंकि सारी योजनाओं का स्थानीय नियोजन सही ढंग से नहीं हुआ।

पहली बार अच्छी फसल देने के बावजूद दूसरी बार बीटी कॉटन बीज नपुंसक निकला। फसलों में नए–नए कीड़े और नए–नए रोग लगने लगे। खाद और कीटनाशक की आवश्यकता भी ज्यादा थी जिसके लिए फिर लेने पड़े कर्ज। सरकार ने जब महसूस किया कि विदर्भ कृषि का ज्वालामुखी है, तो उसने किसानों की कर्ज माफी की। परंतु इसमें सिर्फ उन किसानों को राहत मिली, जिन्होंने बैंकों से कर्ज लिया था। जिन्होंने महाजनों से कर्ज लिया था, उनकी आत्महत्या अनवरत जारी रही। किसानों को जर्सी गायें दी गई। विदर्भ में जहां कुओं में पानी सूख गए हैं, धरती सुख गई है, वहां इन पशुओं को चारा कहां से खिलाएंगे। फिर उन दूधों को उचित ग्राहकों तक पहुंचाने की समुचित व्यवस्था नहीं की गई। वास्तव में विदेशी बीज, विदेशी कर्ज, विदेशी गाय, विदेशी नीति और यहां का गरीब किसान और सूखी धरती सब ने मिलकर किसानों की दुर्दशा की। वास्तव में नीति उधार नहीं ली जाती है वह अपने देश की स्थिति परिस्थिति और जनसंख्या के अनुरूप बनाई जाती है। सूखे प्रान्तों के लिए बकरी पालन या सूअर पालन अपेक्षाकृत कम खर्च और संसाधन का धंधा हो सकता है। कथाकार नाना के माध्यम से सरकार पर तीखे व्यंग्य करता है–"2005 के सेप्टेंबर में गौरमिंट का ऑर्डर हुआ कि पोस्टमार्टम केंद्र चौबीसों घंटे खुले रखे जाएं। सरकार ने मान लिया है कि शेतकरी तो मरेंगे ही मरेंगे। इन्हें पात्र से अपात्र बनाने के लिए कोई प्रमाण देने वाला तो हो। पोस्टमार्टम में क्या मिलेगा – जहर। ना लाचारी निकलेगी, न टेंशन, न कर्ज।"[8] आत्महत्या किए हुए किसान परिवार को मिलने वाली सरकारी मुआवजा में भी भ्रष्टाचार और रिश्वत का बोल बाला है। कोई भी आत्महत्या पात्र घोषित की जाएगी या अपात्र, यह सरकारी बाबुओं पर निर्भर है। तभी तो शिबू की आत्महत्या के बाद उसे यह कहकर पात्र नहीं घोषित किया जाता क्योंकि उसके उपर बैंक का कोई कर्ज नहीं था जबकि वास्तव में बैंक का कर्जा चुकाने में ही उसकी पारिवारिक अर्थव्यवस्था चरमरा गई थी। किसानों की आत्महत्या के कारणों पर विचार करते हुए संजीव समाजशास्त्री दुर्खीम की बातों का उल्लेख करते हैं–"एमिल दुर्खीम की पुस्तक में लिखा है –आत्महत्या के प्रति प्रत्येक समाज का एक सामाजिक झुकाव होता है। यह झुकाव व्यक्ति से परे और उनकी इच्छाओं से ज्यादा बलवान होता है। आत्महत्या के मूल तत्व कहीं ना कहीं सामाजिक संरचना में मौजूद रहते हैं, खासकर उन समाजों में जहां व्यक्ति समाज के अधीन होता है, वहां यह माना जाता है की आत्महत्या उनके अनुशासन की अपरिहार्य क्रिया विधि है, खासकर सामूहिक आत्महत्या के मामलों में उसकी बीजों को देखा जा सकता है।"[9] शिबू की आत्महत्या का अगर समाजशास्त्रीय विवेचना करें तो उसकी पुत्री कलावती के ऊपर लगे अनर्गल आरोपों से उसकी सामाजिक मर्यादा और अनुशासन खंडित होती है। उसे अपने ऊपर सामुदायिक दबाव का भय सताता होगा। आर्थिक विपन्नता ने आत्मविश्वास को हिला कर रख दिया है। प्रतिरोध करने की क्षमता पंगु हो गई है। खेती का

ऋण उतारने में स्थिति जीर्ण–शीर्ण हो गई है। दहेज के अभाव में लड़कियों का विवाह नहीं हो पा रहा है। धार्मिक जकड़बंदी ऐसी की मरने से पूर्व कर्ज चुका देना है। कर्ज चुकाने के पूर्व धर्म–परिवर्तन भी नही करना है। यह सारी परिस्थितियां ऐसी बनती है कि किसान अपने जीवन मूल्य को कम आंकने लगता है और अंत में मौत के ग्रास में समा जाता है संजीव के अनुसार –"कुछ समाज शास्त्रियों का मानना है कि अत्यधिक वैयक्तिकरण आत्महत्या की ओर ले जाता है। आत्महत्या इसलिए की जाती है कि समाज व्यक्तियों को अपने से पलायन करने देता है क्योंकि कुछ मामलों में वह अधिक संपूर्ण होता है, समाज व्यक्ति को अत्यधिक संरक्षण में जकड़े रहता है।"[10] उपन्यास में मोहन दादा अपने दोनों पुत्रों को खेत बेच – बेचकर पढ़ाते हैं, पर वे बुढ़ापे में उन्हें अकेला छोड़ कर शहर चले जाते हैं। लड़की का विवाह वे पहले ही कर चुके थे। खेती, कर्ज, सामाजिक और पारिवारिक असफलता मोहन दादा को अकेला और उदास बना देता है। मोहन दादा की तरह अधिकांशत: किसानों का यही एकाकीपन उन्हें मृत्यु की तरफ खींचता है। यही कारण है कि कृषि प्रधान हमारे देश के स्कूलों में बच्चों को डॉक्टर, इंजीनियर, साइंटिस्ट, इकोनॉमिस्ट बनने की शिक्षा दी जाती है। परंतु किसी को किसान बनने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता है बल्कि जो छात्र किसान बनना चाहते हैं उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता है। सुनील काका की आत्महत्या के पश्चात पाटील काका अपनी नासिक की फैक्ट्री से वी.आर.एस लेकर नगौरा आकर पूर्णकालिक किसान बन गए। सुनील काका के बेटे विजेंद्र का भी सारा रिसर्च किसानों और उनकी समस्याओं के इर्द–गिर्द है। इस प्रकार संजीव का मजदूर से वापस किसानी में लाने वाला विचार प्रगतिशील है। संजीव ने किसानों की आत्महत्या और कर्ज के पीछे और बहुत से कारणों को गिनाया है जिनमें वनों पर से समाप्त होते आदिवासियों के अधिकार, बच्चों की शिक्षा, बेटियों का विवाह, उत्सव धर्मिता, अंबेडकरवादियों के गढ़ों में जारी डांस पार्टियां, शराबखोरी इत्यादि। अमेरिका में भी बीटी कॉटन की खेती होती है पर वहां सरकार कापूस किसानों को कर्ज नहीं बल्कि सब्सिडी देती है। यही कारण है कि वहां किसान आत्महत्या नहीं करता है। हमारे यहां महिला किसानों की भी एक अच्छी खासी संख्या है वह परिवार, रसोई और बच्चों की जिम्मेदारी के साथ–साथ खेती की जिम्मेदारी भी उठाती है। आज हम समाज में साफ–साफ देख सकते हैं कि बहुत से पुरूष शराब और जुए की लत में मदहोश रहते हैं और उनकी पत्नियां ही घर की सारी जिम्मेदारियां संभालती है। उपन्यास में आशा एक ऐसी ही महिला है जिसका पति शराबी है और वह अपने साहस के बल पर दो बेटियों को पालती है, खेती करती है। परंतु कर्ज और फसल की मार के कारण वह भी सल्फर पीकर आत्महत्या कर लेती है। शकुन इन शराब के सारे ठेकों को बंद करा देना चाहती है। परंतु पुलिस, प्रशासन की मदद से यह सारे शराब के अड्डे पुलिस थाना के बगल में खोल दिए जाते हैं। बिना स्वार्थ के कोई पूंजीपति या नेता किसानों की हित की बात ही नहीं करते, कोई पूंजीपति उन्हें कपास की जगह ईंख की खेती करने का सुझाव देता है तो इसके पीछे उनकी मंशा अपने चीनी मिलों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति है। गन्ना की खेती के लिए पानी की व्यवस्था नेताजी करेंगे, सूखी निर्जला नदी में टयूबवेल गड़वाकर निर्ज़ला का सज़ला कर देंगे। बालू का बोझा वे स्वयं उठा लेंगे, आखिर किसानों को बचाने का प्रश्न है, मुफ्त की बालू कमाने का नहीं। संजीव ने किसानों के मार्फत सरकार से कुछ सवाल पूछे हैं, हमारे देश में पेट्रोलियम, तेल का दाम जब तेल कंपनियां निर्धारित करती हैं कोयला, स्टील का भाव सरकार उत्पादक से पूछ कर तय करती है तो कृषि उत्पादों का भाव तय करते समय किसानों से विचार–विमर्श क्यों नहीं करती है? वह किसानों को सिर्फ बिजली माफी, कर्ज माफी की भूल – भुलैया में क्यों भटकाती है ? उपन्यास के उत्तरार्ध में देश के किसानों की समस्याओं को लेकर एक मंथन आयोजित किया जाता है जिसमें देश के अलग–अलग हिस्से से आए किसान, शोधार्थी, कृषि वैज्ञानिक खेती से संबंधित समस्याओं पर अपना विचार रखते हैं। देसी बीज, देसी खाद का प्रयोग, कीटनाशकों में परिवर्तन, मधुमक्खी पालन आदि बहुत मुद्दों पर चर्चा होती है। जैविक तरीके से कीटनाशक और खाद के निर्माण का परीक्षण गांव–गांव जाकर दिया जा रहा है उपन्यास में प्रेमचंद जी के उस कथन का उल्लेख हैजिसमें उन्होंने गन्ना किसानों को अपना गन्ना मील में ना ले जाने का सलाह दी थी ताकि मिल वाले खुद खेत तक आकर अपने किराए और गाड़ी से गन्ना को ले जाएं क्योंकि गन्ना 10 दिनों तक खेतों में रह सकता है मगर मील 1 घंटे भी बंद नहीं रह सकती। मगर मील वालों द्वारा गन्ना ना खरीदने के कारण कर्ज में डूबा रोहिणी का पति खेत में आग लगाकर खुद उसमें कूद गया। इसलिए किसानों को पैकेज नहीं बल्कि ठोस पॉलिसी की आवश्यकता है विदर्भ के किसानों को पैकेज नहीं पानी चाहिए। उपन्यास की नायिका कलावती 65 वर्ष बाद अपने ससुराल में बिजली लाने में सफल होती है ऐसा ही प्रयास खेती के लिए पानी लाने में अपेक्षित है। वैज्ञानिक टमाटरो को जल्दी से सड़ने से बचाने के तरीके पर तथा एक ही आलू से पूरा पेट भरने के तरीकों पर चर्चा करते हैं तो दूसरी तरफ हजारों टन गेहूं पानी में भींग कर सड़ जाता है। वास्तव में इसके पीछे भी भ्रष्टाचार का खेल है। सड़े हुए अनाजों को उन्हीं अधिकारियों द्वारा अत्यधिक कम कीमत पर पूंजीपतियों के शराब कारखानों केबेच दी जाती है जिससे शराब बनती है और यह पूंजीपति, नेता, मंत्री मजा लूटते हैं। अमेरिका में 10 वर्ष तक कृषकों के लिए सब्सिडी की व्यवस्था होने के उपरांत हर मिनट एक किसान खेती छोड़ रहा है। स्वीटजरलैंड जैसे अमीर और खूबसूरत देशों में भी आत्महत्या का आकड़ा अधिक है यहां भी आत्महत्या का कारण एकाकीपन है यहां रात 10 बजे से सुबह 6 बजे तक कोई शोर नहीं मचा सकता। यहां तक कि इस दौरान प्रेशर कुकर की सीटी की आवाज की शिकायत पर भी आपको गिरफ्तार किया जा सकता है। यहां प्राइवेसी के नाम पर अकेलापन है जो उसे आत्महत्या के लिए प्रेरित करता है। हमारे देश में कर्ज में डूबा किसान प्राकृतिक आपदा में अपना फसल नष्ट होने पर एकाकीपन का शिकार हो जाता है।

स्विजरलैंड में तो मर्सी किलिंग' को भी इजाजत मिल जाता है जबकि हमारे देश में भी कुछ किसानों ने सरकार से आत्महत्या के लिए इजाजत मांगी थी पश्चिम का अकेलापन इनका खुद का पैदा किया हुआ है जबकि भारतीय किसानों का अकेलापन हम पर लादा गया है। अतः अंत में संजीव ने अपने सपनों का ग्राम मेंडालेखा के रूप में प्रस्तुत किया है –"आज का हाल यह है कि पुणे से अधिकारी आते हैं माल खरीदने लेकिन हम तय करते हैं कि तेंदू–पत्ते का रेट क्या होगा, चिरोड़ी का रेट क्या होगा। मावा का रेट क्या होगा। रेट जनता तय करेगी। कोई दो बोरा अनाज उगाए तो 4 किलो ग्राम–सभा का। सारी संपत्ति ग्राम समाज की।"[11] प्रेमचंद के सेवा सदन के समान वह 'कलावती कुंज' की स्थापना करवाते हैं जिसमें आत्महत्या ग्रस्त शेतकरी की संतानों को स्वावलंबी बनाए जने का प्रयत्न किया जाता है।

निष्कर्ष

संजीव ने प्रस्तुत उपन्यास में किसानी के साथ–साथ खेती की समस्याओं को उठाया है। उपन्यास में खेती आज किसानों के गले का फांस बन चुकी है उसे न तो छोड़ते बनता है, ना हीं अपनाते बनता है। खेती अगर छोड़ देगा, तो किसान करेगा क्या? और अगर खेती करता है तो उस से आय नहीं हो पा रही है।इसमें सिर्फ भारत की ही नहीं, अपितु चाइना से लेकर केलिफोर्निया तक की किसानों की समस्याओं को रेखांकित किया गया है भारत के विभिन्न अंचलों जैसे पंजाब, गुजरात, बुंदेलखंड का किसान किन–किन चीजों का मारा हुआ है। जरूरी नहीं कि उनकी समस्या एक हो,परंतु उपन्यास में देशी–विदेशी आंचलिक समस्याओं का आकलन इतनी समग्रता में हुआ है कि वह सारी समस्या एकाकार हो गई है।उपन्यास में आत्महत्या करते किसानों का मार्मिक चित्रण है।हमारे देश में कर्ज में डूबा किसान प्राकृतिक आपदा में अपना फसल नष्ट होने पर एकाकीपन का शिकार हो जाता है जो उसे आत्महत्या के लिए प्रेरित करता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *जैन निर्मला (संपा.) 'साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन' (एलेन स्वीगवड) 'समाजशास्त्र और साहित्य लेखन' (अनुवाद निर्मला जैन) प्रथम संस्करण 1986, कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, मॉडल टाउन दिल्ली द्वारा प्रकाशित पृष्ठ संख्या 1*
2. *पांडेय मैनेजर– 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका' तृतीय संस्करण, हरियाणा साहित्य अकादमी पंचकूला पृष्ठ संख्या 5*
3. *संजीव –'संजीव की कथा– यात्रा' पहला पड़ाव, कहानी– 'तीस साल का सफरनामा' संस्करण 2008, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ संख्या 34*
4. *संजीव –'फांस' प्रथम संस्करण 2015, द्वितीय संस्करण 2016, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ संख्या 9*
5. *वही पृष्ठ संख्या 15*
6. *वही पृष्ठ संख्या 15*
7. *वही पृष्ठ संख्या 36*
8. *वही पृष्ठ संख्या 54*
9. *वही पृष्ठ संख्या 110*
10. *वही पृष्ठ संख्या 110*
11. *वही पृष्ठ संख्या 240*